ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. NO.- 113-117**

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदासः एक विचार

डॉ0 जनार्दन झा

असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत, राजकीय महिला महाविद्यालय, सलेमपुर, देवरिया (उ0प्र0) भारत

Received-12.04.2022, Revised-17.04.2022, Accepted-21.04.2022 E-mail: drjanardanjha@gmail.com

सारांश: *– 'अभिज्ञानशाकुंतलम' नाटक के रचयिता महाकवि कालिदास के जीवन चरित्र के विषय में कोई निश्चित और प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं है, यह भी अपने आप में एक विडंबना ही है। इसका मुख्य कारण यह है कि महाकवि कालिदास ने अपने किसी भी ग्रंथ में अपने जीवन से संबद्ध किसी भी बात का उल्लेख नहीं किया है।*

कालिदास के विषय में निश्चित सामग्री के अभाव के कारण अनेक किंवदंतियां प्रचलित हैं। एक किंवदंती के अनुसार वह बचपन में मूर्ख चरवाहा था। एक विद्वान् पंडित ने उसका विवाह रूप तथा विद्या की गर्वित किसी राजकुमारी से करा दिया था। पत्नी द्वारा अपमानित होकर उसने माता काली की उपासना की और उसके वरदान से उसकी सरस्वती प्रसन्न हो गई। घर लौटने पर उसने पत्नी से कहा 'अनावृत्तकपाटं द्वारं देहि'। इस पर पत्नी ने पूछा'अस्तिकश्चिद्वाग्विशेषः? तब कालिदास ने वाग्देवी के प्रसाद को प्रकट करने के लिए पत्नी द्वारा कहे गए वाक्य के तीन शब्दों 'अस्ति''कश्चित' और 'वाग' को लेकर क्रमशः कुमारसंभवममेघदूतम् और रघुवंशम् नामक तीन काव्यों की रचना की। इसी प्रकार और भी किंवदंतियां कालिदास के विषय में प्रचलित है, जिनका उल्लेख यहां पर अनावश्यक प्रतीत होता है।[1]

कुंजीभूत शब्द– अभिज्ञानशाकुंतलम, प्रामाणिक सामग्री, विडंबना, महाकवि, किंवदंतियां, कंवदंती, विवाह रूप, विद्या।

कालिदास के विषय में किसी निश्चित जानकारी के अभाव में उसकी जाति तथा निवास स्थान के विषय में भी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है। श्रौत धर्म के प्रति निष्ठा होने के कारण उसे ब्राह्मण माना जा सकता है। कालिदास के स्थान के विषय में पर्याप्त विवाद है। कश्मीर के विद्वान उसे कश्मीरी सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं और बंगाल के विद्वान् बंगाली। परंपरा के अनुसार कालिदास को उज्जैनी के शासक विक्रमादित्य का आश्रित माना जाने के कारण कुछ विद्वान् उन्हें उज्जैन का निवासी बतलाते हैं। कालिदास की श्रुति स्मृति में विहित ब्राह्मण धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा प्रतीत होती है। कालिदास का पुराणों में कहे गए देव– दानवों तथा यक्ष– गंधर्व में भी विश्वास दिखाई पड़ता है। कालिदास ने अपने काव्यों की कथावस्तुओं को पुराणों से लिया है। वह विष्णु और शिव का समान रूप से भक्त प्रतीत होता है। रघुवंशम् में उसने राम को विष्णु का अवतार माना है और राम के चरित्र का बखान किया है, तो कुमारसंभवम् में शिव के चरित्र का गुणानुवाद किया है।[2]

पुरा कवीनांगणनाप्रसंगेकनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासा। अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव।।

महाकवि कालिदास और संस्कृत साहित्य दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इसीलिए महाकवि कालिदास के बिना संस्कृत साहित्य की परिकल्पना अपूर्ण सा प्रतीत होता है। यद्यपि प्राचीन भारतीय परंपरा के पंडितों और आधुनिक युग के पाश्चात्य तथा भारतीय आलोचकों के काव्य समीक्षा के मानदंड भिन्न–भिन्नहैं और अभिरुचि भी समान नहीं है, परंतु कालिदास के भारत का सर्वश्रेष्ठ कवि होने के विषय में दोनों ही प्रकार के विद्वान् सहमतहैं। प्राचीन परंपरा और आधुनिक आलोचना का यह सामंजस्य यदि किसी कवि के विषय में है तो वह केवल कालिदास के विषय में है। प्रतिभाशाली कलाकार देश और काल की सीमा में आबद्ध नहीं होते हैं, यह बात कालिदास के विषय में सत्य है। उनकी कला का चमत्कार भारत तक ही सीमित नहीं है। विदेशों में भी जो गौरव कालिदास को प्राप्त हुआ वह किसी दूसरे भारतीय कलाकार को प्राप्त नहीं हुआ। कालिदास की कला न केवल सार्वदेशिक है, प्रत्युतसार्वकालिक भी है। कालिदास के काव्यों और नाटकों ने जिस प्रकार आज से डेढ़ हजार वर्ष पहले मानव ह्रदय को उल्लसितकिया था, उसी प्रकार उनकी काव्य कला आज भी मानव ह्रदय को प्रेरणा एवं स्फूर्ति प्रदान कर रही है।

प्राचीन भारतीय परंपरा के सभी कवियों तथा आलोचकों ने कालिदास की भूरि–भूरि प्रशंसा की है। एक प्राचीन कवि ने कहा कि जब कवियों की गणना की जाने लगी तो पहला नाम कालिदास का था, परंतु आगे कालिदास के समय दूसरा कवि ना होने के कारण दूसरी अंगुली पर गिनने के लिए कोई नाम नहीं मिला, इसलिए उसका अनामिका जिस पर कोई नाम ना हो नाम सार्थक रहा।[3]

प्राचीन भारतीय आलोचकों के समान आधुनिक आलोचकों ने भी कालिदास की कथा की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। यह नितांत सत्य है कि आधुनिक काल में संस्कृत के पुनरुज्जीवन का तथा पाश्चात्य देशों में संस्कृत साहित्य के गंभीर अध्ययन के सूत्रपात का श्रेय कालिदास को प्राप्त है।[4]

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

कालिदास प्रकृति के प्रवीण चितेरे थे। उनके सजीव एवं प्रकृति– चित्रण हमारे कल्पना चक्षु के सम्मुख एक स्पष्ट चित्र उपस्थित कर देते हैं। बाह्य दृश्यों के इस संश्लिष्ट एवं रूपयोजनात्मक चित्रण से उनके प्रकृष्ट प्रकृति प्रेम का परिचय मिलता है। इनके प्रकृति– चित्रण में निरीक्षण की नवीनता सहृदयता की सरसता तथा कल्पना की कमनीयता पाई जाती है। कालिदास ने प्रधान तथा प्रकृति के केवल भव्य मनोरम और सौंदर्य समुज्व्ल पक्ष का ही वर्णन किया है।

क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानुबद्धा। अन्यत्र माला सितपंकजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव।[५]

कालिदास ने अपनी कृतियों में प्रकृति और प्रेम का मधुर संबंध स्थापित किया है। उन्होंने प्रकृति को मुख्यतः एक प्रेमिका के रूप में देखा है। पवन के झकझोरों से थिरकती लताओं के रूप में नर्तकियों का सजीव चित्र उपस्थित किया हैः

श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयःकुसुमकोमलदंतरुचो बभुः। उपवनांतलताः पवनाहृतः किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः।।[६]

कालिदास ने प्रकृति को मूक, चेतनाहीन अथवा निष्प्राण नहीं माना है। मानव प्राणियों की भांति उसमें भी सुख–दुख संवेदना का भाव देख पड़ता है।[७] कालिदास की प्रकृति केवल मानवीय भावनाओं से ओतप्रोत ही नहीं है, अपितु वह हमें सत्य, सदाचार और शील का उदात्त पाठ भी पढ़ा रही है।कंचुकी को राजा को उनके आगमन की सूचना देने में संकोच होता है ,लेकिन उसे तुरंत राजधर्म की अपरिहार्यता का ध्यान आ जाता है–

भानुः सकृद्युक्ततुरंग एवं रात्रिदिवं गंधवहः प्रयाति। शेषः सदैवाहितभूमिभारः षष्ठांसवृत्तेरपि धर्म एषः।।[८]

कालिदास ने किस प्रकार क्रमशः प्रकृति के मार्मिक प्रभाव को हृदयंगम किया था, यह समझने के लिए उनके ग्रंथों का तुलनात्मक अध्ययन करना आवश्यक है। 'ऋतुसंहारम' में तरुण कवि प्रकृति का प्रेमी है, पर वह कामिनियों का अपेक्षाकृत अधिक प्रेमी है। कुमारसंभवम् में प्राकृतिक विभूति और देवी विभूति में साम्य स्थापित किया गया है। मेघदूतम् में कवि ने मनुष्य और प्रकृति के मध्य तादात्म्य स्थापित करने का अद्भुत प्रयास किया है। रघुवंशम्में कुछ और ऊंचे स्तर पर पहुंच गया है। उसने प्रकृति जीवन का मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन से संबंध स्थापित किया है। उसमें कवि ने दिखाया है कि प्रकृति जीवन से वियुक्त मानव जीवन समाप्ति आध् यात्मिक ह्रास, सामाजिक दुर्दशा तथा राजनीतिक अवनति में जाकर होती है। कवि की सर्वोच्च प्रतिभा का निदर्शन प्रकृति के संदेश का मार्मिक उद्घाटन अभिज्ञानशाकुंतलम् में जाकर हुआ है।यहां पर कालिदास ने प्रेम के चित्रण में और भी उच्चतर भावना को प्रकट किया है। दुष्यंत और शकुंतला का प्रथम दर्शन में उत्पन्न प्रेम बाह्य सौंदर्य पर आश्रित था, अतः वह अंततः अस्थिर एवं कष्टदायक सिद्ध हुआ। दुर्वासा के शाप की कल्पना से कालिदास ने इसी तथ्य का उद्घाटन किया है कि किस प्रकार बाह्य सौंदर्य पर आधारित दुष्यंत का प्रेम तनिक से झटके में समाप्त हो जाता है। परंतु बाद में दुष्यंत को जब मारीच के आश्रम में शकुंतला मिलती है तो वह पहले के समान सौंदर्य की राशि नहीं है, चिर–विरह तथासंताप की पीड़ा ने उसे क्षीण कर दिया है, उसके वस्त्र मलिन और केश श्रृंगार विहीन।[९]

वाष्पेण प्रतिषिद्धेऽपि जयशब्दे जितं मया। यत्ते दृष्टमसंस्कारपाटलोष्ठपुटं मुखम्।।[१०(अ)]

पहले उनका मिलन इंद्रिय वासना पर आधारित था, इसलिए पार्थिव था, लेकिन इस अवस्था में उनका मिलन दो हृदयों का आध्यात्मिक शाश्वत है, जो पारस्परिक निष्ठा एवं समर्पण की भावना पर आधारित है।[१०(ब)]

कालिदास ने स्त्री सौंदर्य के वर्णन में अपने उपमान प्रकृति से लिए हैं। दुष्यंत के मुख से कवि ने शकुंतला के सौंदर्य का वर्णन इन शब्दों में कराया है।

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू। कुसुममिव लोभनीयं यौवनमंगेषु संनद्धम।।[११]

कालिदास के अनुसार रूप सौंदर्य गुणों से हीन नहीं होता। शकुंतला और दुष्यंत के गंधर्व विवाह के उपरांत यज्ञ की समाप्ति पर ऋषियों के दुष्यंत को विदा कर देने पर शकुंतला की सखी अनुसूया चिंता करने लगती है कि न जाने नगर में पहुंच कर राजा को आश्रम की बात स्मरण भी रहेगा या नहीं। इस पर प्रियंवदा कहती है–'न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवंति'। कालिदास को यह निश्चय है कि सौंदर्य का आकर्षण कभी इंद्रिय कामुकता और पाप वासना की ओर नहीं ले जाता है।

यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः। तथा हि थे शीलमुदारदर्शने तपस्विनामप्युपदेशतां गतः।।[१२]

अलंकारों के प्रयोग में कवि ने अपनी सूक्ष्म मर्मज्ञता का परिचय दिया है। कालिदास की कविता अत्यधिक अनावश्यक अलंकारों के भार से आक्रांत कामिनी की भांति मंद मंथर गति से चलने वाली नहीं है, अपितु "स्फुटचन्द्रतारकाविभावरी" की भांति अपने सहज सौंदर्य से सहृदयों के चित्त को आकृष्ट करने वाली है। यमक से रस भंग होने की आशंका रहती है। इसलिए कवि ने उसका बहुत ही कम प्रयोग किया है, जैसेः 'वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः',' मनुष्य वाचा मनुवंशकेतुम' ।कालिदास की उपमाओं की विलक्षणता तो विश्व विख्यात है–'उपमाकालिदासस्य'। वास्तव में उनकी उपमाएं अद्वितीय हैं। अनुरूपता सरसता तथा अपूर्वता की दृष्टि से वे बेजोड़ हैं। मदन दाह उपरांत शोक से व्याकुल रति की पानी सूख जाने पर तालाब में अकेली छटपटाती मछली

से मूर्त उपमा दी गई है।[13]

संसार के सभी साहित्य में प्रेम और सौंदर्य कवियों का प्रिय विषय रहा है। कालिदास ने इन दो विषयों के वर्णन में अपनी जिस असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया है, वह उन्हें श्रृंगार रस के कवियों में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करती है। प्रेम जोकि भिन्न रूपों और भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में प्रकट होता है, मानव हृदय का अलौकिक अध्यात्म तत्व है। स्त्री पुरुष की ऐन्द्रियिक वासना मात्र को प्रेम समझना सारी भूल है। यद्यपि यह ठीक है कि प्रेम का स्वरूप स्त्री पुरुष के प्रेम में झलकता है, परंतु स्त्री पुरुष का भी वास्तविक प्रेम वही है, जो ऐन्द्रियिक वासना से ऊपर उठकर एक दूसरे के प्रति आत्म समर्पण में है और वह सचमुच अलौकिक और आध्यात्मिक है। कालिदास की सारी कला इस महान् तथ्य को प्रकट करती है कि इस प्रकार ऐन्द्रियिक वासना क्रमशः विकास को प्राप्त होती हुई। पारस्परिक समर्पण के रूप में अलौकिक दिव्य रूप धारण कर लेती है।[14]

भारतीय साहित्य शास्त्र के मर्मज्ञों के काव्य और नाटक का विवेचन करते हुए प्रत्येक कला में रहने वाली एक अलौकिक शक्ति का विवेचन किया था जिसे उन्होंने व्यंजना नाम दिया। व्यंजना शक्ति सिद्धांत को कदाचित् कालिदास की रचनाओं को देखकर निकाला था। कालिदास की रचनाओं में व्यंजना शक्ति का बाहुल्य है। जिस भाव को दूसरे कवि दो–चार श्लोकों में कहते हैं, कालिदास उस भाव को एक छोटे से वाक्य में प्रकट कर देते हैं। उदाहरणार्थ–'अये लब्धं नेत्रनिर्वाणम्'।[15]'अहा, मैंने नेत्र तृप्ति पा ली'। इस छोटे से वाक्य में ऐसी व्यंजना विद्यमान है,जो बहुत सारे श्लोकों में भी नहीं कही जा सकती। महाकवि कालिदास की व्यंजना शक्ति का सबसे सुंदर उदाहरण अभिज्ञानशाकुंतलम् के चतुर्थ अंक में शकुंतला का आश्रम से विदा लेने का है। शकुंतला की विदाई का समय आता है तब कण्व ऋषि आश्रम के वृक्षों को संबोधन करते हुए कहते हैं:–

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलंयुष्मास्वपीतेषु या, नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः सेयं याति शकुंतला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।[16]

इस तरह पृष्ठभूमि तैयार करने के बाद कालिदास दो–चार छोटे–छोटे वाक्यों के द्वारा ही करुण रस को पराकाष्ठा को पहुंचा देता है। आश्रम से विदा लेते हुए शकुंतला अनेक करुण भावनाओं से भरी हुई है, लेकिन आश्रम के पक्षियों और पौधों की दशा भी कम शोचनीय नहीं है।

उद्गलितदर्भकवलाः मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।[17]

किसी देश और जाति के आदर्शों का प्रतिबिंब उसके प्रतिनिधि साहित्य में अवश्य ही झलक जाता है। इसी प्रकार किसी कवि या लेखक की रचनाओं में उसके जीवन दर्शन का प्रतिबिंब संक्रांत रहता है। कालिदास का ऐहिक जीवन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण था। उसने संभवतः कभी दारिर्द्य एवं निराशा का मुख नहीं देखा था, इसलिए उनके काव्यों में कहीं भी हीनता तथा विवशता की झलक नहीं दीख पड़ती है। संस्कृत साहित्य में कालिदास माननीय भावनाओं के कवि हैं, उसने दिव्य चरितों को भी माननीय दृष्टिकोण से देखा है। उसके देव और यक्ष भी मानवीय भावनाओं से ओतप्रोत है। देवात्मा हिमालय, देवाधिदेव महादेव, कुबेर का सेवक यक्ष, सब ही विभिन्न परिस्थितियों में मानव के समान ही चेष्टा एवं व्यवहार करते हैं। कालिदास का विश्वास है कि वर्णाश्रम धर्म का पालन करके पुण्य कर्मों के प्रताप से मानव देव बन जाता है और पुण्य कार्यों की समाप्ति पर देव भी पार्थिव शरीर धारण करते हैं। कालिदास के देव और मानव में आतंकित करने वाला अंतर नहीं है। कालिदास ने अपने नायकों के चरित्र द्वारा जिस आदर्श को उपस्थित किया है वह उसके युग की चेतना के सर्वथा अनुरूप है। कालिदास स्मार्त धर्म का प्रबल पोषक था। वर्णाश्रम धर्म में उसकी प्रबल निष्ठा थी। तपोवन में प्रवेश करके मधुर दर्शन मुग्ध तपस्वी कन्या के सौंदर्य पर मोहित हुआ भी दुष्यंत इस चिंता में है कि यदि शकुंतला कुलपति कण्व की और असवर्ण पत्नी में उत्पन्न हो तो कैसे अच्छा? कालिदास ने राजा दुष्यंत को तभी आश्वस्त दिखलाया है, जब उसे यह पता चल जाता है कि शकुंतला मेनका में उत्पन्न राजर्षि कौशिक की पुत्री है। ब्राह्मण कण्व की पुत्री नहीं है–

भव हृदयं साभिलाषं संप्रति संदेहनिर्णयो जातः। आशंकसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम्।।[18]

विक्रमोर्वशीयम् नाटक में भी कवि ने इसी तथ्य को प्रकट किया कि प्रेम की दाह में द्रवित हुए दो हृदय परस्पर मिलने के योग्य होते हैं। उर्वशी के पास से आने वाली उसकी सखी से पुरुरवस् कहता है–

पर्युत्सुकां कथयसि प्रियदर्शनां तामार्तिं न पश्यसि पुरूरवसस्तदर्थाम्।[19]

कालिदास के अनुसार दो शरीरों के मिलन की अपेक्षा दो हृदयों का मिलन कहीं अधिक अच्छा है–

अनातुरोत्कंठितयोः प्रसिध्यता समागमेनापि रतिर्न मां प्रति।[20]

भौतिक सौंदर्य में आकर्षण अवश्य है, परंतु दो हृदयों का आध्यात्मिक मिलन उससे कहीं अधिक सुंदर है। हमें यह संदेश कालिदास के काव्यों ने जगह जगह पर मिलता है। शिव को पति रूप में पाने की अभिलाषिणी पार्वती ने नेत्रों के सामने कामदेव

को भस्म होते देखा तो, उसने बाह्य सौंदर्य की निरर्थकता को समझ लिया और शील तथा उत्सर्ग से इष्ट को प्राप्त करने का निश्चय कर लिया–

तथा समक्षं दहता मनोभवंपिनाकिना भग्नमनोरथा सती। निनिन्द रूपं ह्रदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।।[१]

रघुवंश महाकाव्य में कालिदास ने सिंह दिलीप संवाद में सिंह द्वारा नवयुवक एक छात्र राज्य तथा अन्य सांसारिक सुख भोग में समर्थ पुष्ट शरीर को बचाने की सलाह दिए जाने पर दिलीप के मुख से इसी तथ्य की ओर इशारा किया है–

किमप्याहस्यस्तव चेन्मतोऽहं यशःशरीरे भव मेदयालुः।[२]

महाकवि कालिदास ने बाल्यकाल में ब्रह्मचर्य, युवावस्था में गार्हस्थ्य और वृद्धावस्था में वानप्रस्थ धर्म का पालन करते थे और अंत में योग द्वारा शरीर का परित्याग करते थे–

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम।।[३]

राम द्वारा जनापवाद के कारण अपनी प्रिया जानकी के त्याग के निश्चय में भी कवि ने यही संदेश दिया है–

निश्चित चानन्यनिवृत्ति वाच्यं त्यागेन पत्न्याः परिमाष्र्टुमैच्छत्।[४]

अभिज्ञान शाकुंतलम् के भरत वाक्य से कालिदास के जीवन दर्शन का स्पष्ट ज्ञान होता है। कालिदास की दृष्टि समन्वयवादी है। वह सांसारिक उन्नति के साथ–साथ आत्मिक उन्नति के प्रति भी सावधान है। वह भौतिक सुख समृद्धि की भी कामना करता है और प्राचीन शास्त्रों में सम्मत मोक्ष की भी कामना करता है। इसीलिए उसने अभिज्ञानशाकुंतलम् की समाप्ति पर भरत वाक्य का प्रयोग किया है–

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः, सरस्वती श्रुतमहतां महीयताम्। ममापि च क्षपयतु नीललोहितः,पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः।।[५]

अप्रामाणिक रचनाओं को छोड़कर कालिदास की सात रचनाएं मानी जाती हैं। जिसमें 3 नाटक दो महाकाव्य और दो गीतिकाव्य हैं, जिनके नाम निम्नांकित हैं– मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम्, अभिज्ञानशाकुंतलम् ,कुमारसंभवम्, रघुवंशम्,ऋतुसंहारम, औरमेघदूतम्।

कालक्रम की दृष्टि से ऋतुसंहारम् कालिदास की प्रथम कृति प्रतीत होती है। इसके पश्चात मालविकाग्निमित्रम् और विक्रमोर्वशीयम् आते हैं, उसके बाद कुमारसंभवम् तत्पश्चात्मेघदूतम् और रघुवंशम् है और सबसे बाद का ग्रंथअभिज्ञान–शाकुंतलम् प्रतीत होता है।

कालिदास के ग्रंथों के अध्ययन से पता चलता है कि वह संस्कृत भाषा के संपूर्ण ज्ञान से परिचित थे। उन्होंने अश्वमेध,पुत्रेष्टि आदि यज्ञों का उल्लेख किया है। इससे पता चलता है कि वह वैदिक कर्मकांड से अच्छी तरह से परिचित हैं। अभिज्ञानशाकुंतलम् में भी दिष्ट्या धूमाकूलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता', 'अभिनवसंमार्जनसश्रीकः संनिहितहोमधेनुरग्निशरणालिन्दः' आदि प्रसंगों से कालिदास का वैदिक कर्मकांड से परिचय लक्षित होता है। दर्शन शास्त्रों में योग न्याय वैशेषिक वेदांत आदि सभी के सिद्धांतों का उल्लेख कालिदास की रचनाओं में बहुधा पाया जाता है। ' अमूनाश्रमवासिनः श्रौतेन विदिशा सत्कृत्य स्वयंमेव प्रवेशयितुमर्हति। अहमप्यत्र तपस्विदर्शनोचिते प्रदेशे स्थितः प्रतिपालयामि।' से पता चलता है कि कालिदास को धर्म शास्त्रों का भी अच्छा ज्ञान था। इसीलिए उसने राजा के मुख से धर्म शास्त्रों की विधि से तपस्या के सत्कार का आदेश कराया है। क्षत्रियोचित गांधर्व विवाह का उल्लेख तथा कन्या के प्रति गुरुजनों के कर्तव्य का उल्लेख जी कालिदास के धर्म शास्त्र के ज्ञान को सूचित करता है। इसी प्रकार यह भी स्पष्ट है कि उसे काम शास्त्र अर्थशास्त्र और राजनीति आदि का पूर्ण परिचय था। रामायण, महाभारत, कथा, पुराणों का उसने भली–भांति अध्ययन किया था।

कालिदास का केवल तत्कालीन साहित्य से ही परिचय नहीं था, अपितु वह संगीत नृत्य एवं चित्रकला आदि अन्य ललित कलाओं से भी सुपरिचित था। अभिज्ञानशाकुंतलम् के प्रारंभ में तवास्मिगीतरागेण ३ से कवि ने संगीत कला से अपना परिचय प्रकट किया है।[६]

उपसंहार– कालिदास संस्कृत साहित्याकाश के सर्वोज्ज्वल नक्षत्र हैं। सच कहा जाए तो कालिदास ने संस्कृत के काव्यों के स्पृहणीय स्वरूप का चरम विकास हुआ है। कालिदास के उत्तरवर्ती कवियों के काव्यों में कला के बाह्य पक्ष की साज–संवार तो दृष्टिगोचर होती है, परंतु उसमें आंतरिक पक्ष सरसता और मार्मिकता का ह्रास होता चला गया है। कालिदास की कला की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह वातावरण की सृष्टि करके थोड़े से शब्दों में बहुत कुछ प्रकट कर देता है। वह स्वयं थोड़ा कहकर शेष की अनुभूति के लिए अपने पाठकों को अकेला छोड़ देता है। उसने शब्दों के चुनाव पर ध्यान दिया

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

है, भाषा को संवारा है, लेकिन परवर्ती कवियों की भांति उसे अलंकारों के भार से भारी–भरकम नहीं होने दिया है। उसके काव्यों तथा नाटकों में जगह–जगह पर अर्थान्तरन्यास के रूप में जीवन के अनुभवों को सरल रूप में उपस्थित किया गया है, जो 'कांतासंमिततयोपदेशयुजे' के अनुसार पाठक के अंतः करण पर स्थाई संस्कार छोड़ देते हैं। संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास के आदर्शों का अनुसरण एवं उनके कृतियों का सम्यक् अनुशीलन करने के उपरांत निश्चित रूप से हमारी वर्तमान पीढ़ी और समाज मानवीय गुणों से समन्वित होने में पूर्णतया समर्थ हो सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१ संस्कृत सा० का वि०इति०,
२ अभिज्ञानशा०,मू,लीकप्रमे,१,
३ अ०शा०,मू०,लीकप्रमे,२७,
४ अभि०शा०,मू०, लीकप्रमे,२८,
५ रघुवंशम्,१३,५४,
६ रघु०,६,३५,
७ अ०शा०,मू०,१८,
८ अ० शा०, मू०,२०,
९ अ० शा०, मू०,२१,
१० (अ) अ० शा०,अंक७,२३,
१० (ब) अ० शा०,अंक७,२३,
११ अ०शा०, अंक१,१८,
१२ कुमारसम्भवम् ,५,२६,
१३ अ०शा०, मू०,२५,
१४ अ० शा,मू०,२०,
१५ अ०शा० लीकप्रमे,८०,
१६ अ०शा०,अंक४,लीकप्रमे,६,
१७ अशा०,अं०४ लीकप्रमे,१२,
१८ अ० शा०, अं०१, लीकप्रमे,२४,
१९ विक्रमो०,अं०,२,
२० मालवि०, ३,१५,
२१ कुमारसम्भव,५,१,
२२ रघुवंशम्,२,५७,
२३ रघुवंशम्,१,८,
२४ रघुवं०,१४,३५,
२५ अ०शा०, अं०७,लीकप्रमे,३४,
२६ सं० सा० का वि० इ०।

*****